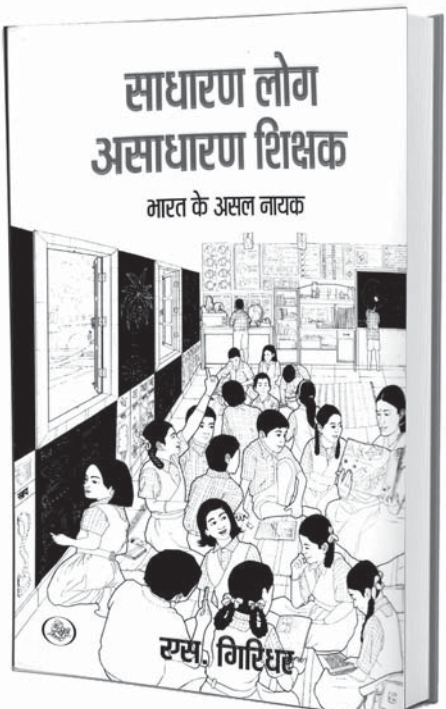
शिक्षकों की प्रेरणादायी गाथाएँ कहती एक किताब

निशा नाग

एस गिरिधर द्वारा लिखी गई किताब *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* सरकारी यानी पब्लिक स्कूल के उन शिक्षकों के बारे में है जो उनकी देखरेख में आने वाले बच्चों की ज़िन्दगियों को बेहतर बनाने के लिए पूरी तरह से प्रतिबद्ध हैं। ये वे शिक्षक हैं जो हर सीमा को लाँघने का साहस रखते हैं क्योंकि इनका मानना है कि हर बच्चा सीख सकता है। यह किताब ऐसे जुझारू और प्रेरणादायी शिक्षकों एवं जिस माहौल में वे काम करते हैं उसके बारीक़ अध्ययन से सम्भव हुई है। सं.

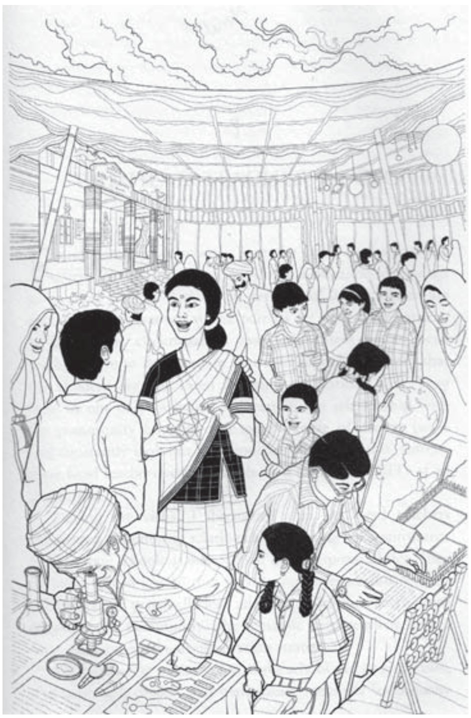


साधारण लोग असाधारण शिक्षक
भारत के असल नायक
लेखक : एस गिरिधर
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

अभी हाल ही में ख़बर आई कि सुप्रीम कोर्ट ने शिक्षकों को भी अपने वाहन पर उस तरह का 'लोगो' लगाने की सहमति दे दी है जैसा डॉक्टर या वकील लगाते हैं। लोगो पर लिखा गया है 'राष्ट्र के निर्माता'। एस गिरिधर की पुस्तक *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* इन्हीं राष्ट्र निर्माताओं से साक्षात्कार कराती है जो अनाम लेकिन असल नायक हैं और वे सतत परिश्रम से राष्ट्र निर्माण में सहयोग दे रहे हैं साथ ही तन, मन और धन से अगली पीढ़ी का निर्माण कर रहे हैं। बड़ी बात यह है कि ये नायक उच्च शिक्षण संस्थानों से जुड़े हुए नहीं हैं बल्कि उस नींव को बना रहे हैं जिसपर शिक्षा की इमारत का पूरा ढाँचा खड़ा होता है। सभी शिक्षक ये मानते हैं कि केवल साक्षरता ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं है बल्कि उससे बढ़कर शिक्षा व्यक्तित्व निर्माण का औज़ार है।

साधारण लोग असाधारण शिक्षक आँखिन देखी सच की लम्बी श्रृंखला है। गिरिधर का यह निरन्तर प्रयास और परिश्रम उन्हें उन दूर-दराज़ के विद्यालयों की ओर ले गया जहाँ बेसिक सुविधाओं का अभाव, दुर्गम भौगोलिक स्थितियाँ, पिछड़े और हाशियाकृत वर्ग के

विद्यार्थी हैं। "ग्रामीण सरकारी स्कूल बेहद विपरीत परिस्थितियों में काम कर रहे हैं। इन स्कूलों में सामाजिक-आर्थिक तौर पर सबसे ज़्यादा वंचित बच्चे पढ़ते हैं। इनमें से लगभग 50 फ़ीसदी बच्चे पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं जिनके माँ-बाप दिहाड़ी कमाने वाले मज़दूर हैं"। परन्तु शिक्षकों की मेहनत ने रंग लाकर उन्हें अग्रिम पंक्ति में लाने का प्रयास किया है। एक ओर यादगीर, कर्नाटक के परमेश्वरय्या हिरेमठ हैं जो 'ट्रांसफ़ॉर्मर सुधारने से लेकर बच्चों के जीवन में बदलाव लाने का सफ़र' तय कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर उत्तरकाशी, उत्तराखंड की रामेश्वरी हैं जो लगातार यह प्रयास करती रहती हैं कि 'हर बच्चा स्कूल की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी करे; कि बच्चे एक दूसरे की मदद करें और उनमें सहभागिता की भावना हो'। इस तरह वे पाठ्यक्रम पूरा करने के काम को बच्चों के सामाजिक विकास से जोड़ देती हैं। वे कहती हैं– "संवेदनशीलता, ज़िम्मेदारी, सहभागिता और दूसरों की मदद करने की भावना के अभाव में महज़ पढ़ने, लिखने, गिनती करने या गुणा करने की योग्यता का मेरी नज़र में बहुत महत्त्व नहीं है।... कला, संगीत व सामान्य ज्ञान जैसी पाठ्येतर गतिविधियाँ उनके टाइम टेबल का उतना ही अहम हिस्सा हैं जितना कि पाठ्यक्रम"। सामाजिक सरोकार से जुड़े ऐसे अध्यापक यह जानते हैं कि बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा का विकास होना चाहिए, जिसके लिए शिक्षकों को आवश्यक संसाधन, प्रशिक्षण और वातावरण मिलना चाहिए। इसका दायित्व केन्द्र और राज्य सरकारों पर है। परन्तु ऐसे भी अध्यापक हैं जो संसाधन जुटाने के लिए अपना पैसा ख़र्च करने से भी नहीं हिचकते। उत्तराखंड में पढ़ाने वाले अवनीश का आख्यान है– "पाँच कक्षाओं के 84 बच्चों के लिए वहाँ महज़ दो कमरे थे। उन्होंने और कमरे बनवाने के लिए धन आवण्टित करने के लिए ब्लॉक अधिकारियों पर दबाव बनाना शुरू कर दिया। इस बीच उन्होंने स्कूल के पास ही एक कमरा किराए पर ले लिया। इसके लिए वे अपनी जेब से 1500 रुपए हर महीने लगाते हैं। पिछले चार साल से अवनीश इस कमरे का किराया भर रहे हैं"। ऐसे भी शिक्षक हैं जिन्होंने अपनी जेब से पैसा लगाकर स्कूल में बालिकाओं के लिए शौचालय बनवाया। न केवल यही बल्कि दुर्गम इलाक़ों में बरसात के मौसम में कमर भर कीचड़ से गुज़रकर स्कूल पहुँचने वाली शिक्षिकाओं के साथ ऐसी भी शिक्षिकाएँ हैं जिनका ध्यान इस तरफ़ गया कि लोग निजी स्कूलों में बच्चों को इसलिए भर्ती कराते हैं क्योंकि सरकारी स्कूलों से पहले ही वहाँ शिक्षा प्रारम्भ होती है और एक बार निजी स्कूल में बच्चे के दाख़िले के बाद उसे वहाँ से निकालना मुश्किल होता है। इसलिए वे स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों को अपने छोटे भाई-बहनों को भी साथ लाने के लिए प्रेरित करती हैं।



यह पुस्तक इन स्कूलों में कार्यरत, उन कर्मशील अध्यापकों की गाथा कहती है जो पढ़ाने की नई विधियाँ, शिक्षा में गुणवत्ता और मूल्यों के अधिग्रहण आदि पर बल देते हैं। खेलकूद,

विज्ञान, नए प्रयोग, विद्यार्थियों के साथ समूह चर्चा आदि गतिविधियों के माध्यम से छात्रों के सर्वांगीण विकास पर बल देते हैं। इसके साथ ही अध्यापकों के सम्मान का प्रश्न और उनकी मेहनत की स्वीकार्यता दोनों यहाँ मौजूद हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर सुधार और गुणवत्ता के संकल्प, मिशन और उद्देश्य को धारण करने वाले शिक्षकों के प्रयत्न का बखान करती यह पुस्तक भविष्य के उस सूर्योदयी विश्वास को जगाती है जो सबके लिए समान शिक्षा के अधिकार से जुड़ा है। वर्तमान समय में स्कूली शिक्षा के जगत में अनेकानेक पूर्वाग्रह आम आदमी के मानसिक जगत को घेरे हुए हैं। इनमें सबसे बड़ा पूर्वाग्रह यही है कि निजी यानी पब्लिक स्कूलों में सरकारी स्कूलों के मुक़ाबले बेहतर पढ़ाई होती है, वहाँ का माहौल, अनुशासन, शैक्षिक सुविधाएँ सरकारी स्कूलों से कहीं बढ़-चढ़ कर होती हैं। गिरिधर द्वारा लिखित *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* इस पूर्वाग्रह को तोड़ने का सफल प्रयास है। बाजपुर ब्लॉक, उत्तराखंड के अध्यापक धर्मवीर सिंह चौहान कहते हैं– "स्कूल में बच्चों के नामांकन में साल-दर-साल सुधार ही हुआ है। 2005 में 34 विद्यार्थियों से बढ़कर 2008 में ये 59 हो गया और 2016 में 134, इसके पीछे कठिन परिश्रम और थोड़ी बहुत चतुराई दोनों हैं"। एक अन्य उदाहरण "स्कूल पर एक बड़ा विश्वास दिखाते हुए 67 बच्चों को उनके पालकों ने आसपास के दो निजी स्कूलों से निकालकर तालबपुर प्राइमरी में दाख़िल कर दिया"। वर्तमान समय में परिवर्तन की तीव्र गति के बीच सजग और सतर्क अध्यापक अथक परिश्रम से इस धारणा को बदलने का प्रयत्न कर रहे हैं और वे सफल भी हुए हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि ये सतत प्रयत्न इस बात का प्रमाण हैं कि मानव शक्ति के उपयोग में किसी भी वर्ग का पिछड़ा रह जाना न तो न्याय संगत है और न ही मानवीय, तब महँगी शिक्षा से वंचित आम जनता के पास एक ही उपाय, सरकारी स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने का बचता है क्योंकि "सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था ध्वस्त हो गई तो फिर शिक्षा के अधिकार की कोई प्रासंगिकता ही नहीं बचेगी।" लेखक ने स्वयं पुस्तक के आमुख में सशक्त दलील देते हुए यह कहा है, "हमें सरकारी स्कूलों का समर्थन क्यों करना चाहिए"। पूरी पुस्तक पाँच अध्यायों में बँटी हुई है– 1. सीईओ की भूमिका में हेड टीचर, 2. विचारशील प्रैक्टिशनर्स : ताउम्र सीखते रहने की प्रतिबद्धता, 3. समता और गुणवत्ता : क्लासरूम में होती है इनकी शुरुआत, 4. सामूहिक कामकाज: एक बड़े लक्ष्य का आकर्षण, 5. नायक : जो किसी रुकावट को नहीं मानते। इन खण्डों में बँटी हुई पुस्तक की ख़ासियत यह भी है कि इसे बिना किसी रुकावट के कहीं से भी पढ़ा जा सकता है। प्रारम्भ में भारत की शिक्षा व्यवस्था के ढाँचे और स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के आँकड़ों सहित गम्भीर विश्लेषण है तो अन्त में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के सीईओ अनुराग बेहार के वक्तव्य 'ये कहानियाँ क्यों कही जानी चाहिए' के माध्यम से इस बृहत् आख्यान कथाओं के कोलाज की सार्थकता को प्रामाणिकता दी गई है।



ये वे अध्यापक हैं, जो कोई काम आदेश से नहीं बल्कि मन की गहराइयों से कर रहे हैं। इन्हीं जननायकों का आख्यान लिए *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* के विषय में एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि यह पुस्तक सुव्यवस्थित रूप से लिखी गई है। पुस्तक के आरम्भ में ही लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार वे इस संस्था से जुड़े। पुस्तक लिखने का उद्‌देश्य क्या है? क्यों आख्यान में ढालकर इन सच्ची कथाओं को कहा गया है? किस प्रकार से स्कूलों का चयन किया गया है?

एस गिरिधर कहते हैं, "मैंने एक ब्लॉक शिक्षा अधिकारी के साथ कई दिन गुज़ारे यह समझने के लिए कि उनकी ज़िम्मेदारियाँ, कामकाज की दिनचर्या और तरीक़े क्या हैं?"। एक बड़ी बात ये है कि पुस्तक में हर आख्यान प्रामाणिक है। ग्राफ़, बार चार्ट, कैमरे से खींची गई तस्वीरों के साथ-साथ, तारीख़ें, आरेखन, आभार नोट्स, आँकड़े, सन्दर्भ, संक्षिप्ताक्षरों का परिचय इसे निरन्तर प्रामाणिक बनाता है। लोकेश मालती प्रकाश द्वारा अनूदित एवं गुरबचन सिंह द्वारा सम्पादित *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* सटीक अनुवाद का साक्षात् उदाहरण है जहाँ अनूदित भाषा निकटतम पर्यायों द्वारा अनुवाद की नहीं बल्कि मूल भाषा हिन्दी की ही प्रतीत होती है।



यह पुस्तक न केवल पठनीय है अपितु पाठक को एक नया उत्साह भी प्रदान करती है और कुछ करने की प्रेरणा देने के साथ-साथ यह सोचने पर भी विवश करती है कि आर्थिक रूप से सशक्त, पैसा बनाने की मशीन बने निजी स्कूलों के सामने आमजन के स्कूल किस तरह धीरे-धीरे, किन्तु सतत एवं सार्थक प्रयत्नों द्वारा आगे बढ़ रहे हैं।

भारत जैसे बड़े और विविधतापूर्ण देश में शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप अत्यन्त जटिल है। यहाँ 'दस लाख से भी ज़्यादा स्कूलों की विशालकाय व जटिल व्यवस्था को चलाने की चुनौती' है, पर साथ ही शिक्षकों के रूप में ऐसे जननायक हैं जो सतत परिश्रम से अपने अध्ययन की कमी को स्वीकारते हुए आगे पढ़ भी रहे हैं और विविध शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग भी ले रहे हैं। शिक्षिकाएँ घर-परिवार के कार्यों के साथ समय पर स्कूल पहुँचने के लिए अपना वाहन चलाना भी सीख रही हैं। अपने स्कूल को श्रेष्ठ बनाने की धुन में और यह दिखाने के लिए, कि उनका स्कूल किसी महँगी फ़ीस वाले निजी स्कूल से कम नहीं, अपनी जेब से पैसा लगाकर एक ओर विद्यार्थियों की यूनिफ़ॉर्म में सुधार कर रहे हैं दूसरी ओर उनके लिए नोटबुक, खेल सामग्री और प्रायोगिक सामग्री जुटा रहे हैं। व्यवस्था की सीमाओं के बावजूद इन शिक्षकों ने किस प्रकार स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावकों के साथ तालमेल बैठाकर उन्हें विश्वास में लिया है, समुदाय के अलग-अलग तरह के तत्त्वों को एक मंच पर लाने के लिए जी तोड़ मेहनत की है और उनके भरोसे व विश्वास को जीता है इसकी एक से बढ़कर एक गाथाएँ पुस्तक में मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त, लगातार फ़ील्ड दौरों के लम्बे अनुभव के बाद लेखक ने कुछ ठोस उपाय भी सुझाए

हैं, जैसे– 'अच्छे पोस्टर तैयार कराए जाएँ और उन्हें जगह-जगह लगाया जाए जो स्कूल की प्रतिबद्धता दिखाते हों; राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय मूल्यांकनों के परिणाम का प्रचार-प्रसार किया जाए; विविध प्रतियोगिताओं के परिणामों को प्रदर्शित किया जाए; शैक्षिक गतिविधियों से जुड़े मेलों का आयोजन और विविध अवसरों एवं सुबह की सभा देखने के लिए समुदाय को भी आमंत्रित किया जाए, साथ ही यह बताया जाए कि कक्षाओं, पुस्तकालय, बग़ीचे, रसोई और शौचालय का रख-रखाव किस तरह किया जाता है'। यही वह मार्ग है जिसके द्वारा सबके लिए समान, समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध हो सकती है। *साधारण लोग असाधारण शिक्षक* सधे हुए ढंग से अपनी बात आम जन तक पहुँचाती है। इसकी सबसे बड़ी ख़ूबी यह है कि इतने गम्भीर विषय को लेकर लिखी जाने के बावजूद पूरी पुस्तक कहीं भी नीरस नहीं हो पाई है। इस सटीक प्रयास के लिए एस गिरिधर को साधुवाद।

डॉ. निशा नाग हिन्दी में एमफिल, पीएचडी हैं। विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में आपकी समीक्षाएँ, लेख व कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्रवक्ता हैं जहाँ वे पिछले 23 वर्षों से अध्यापन कर रही हैं।

सम्पर्क : nishanagpurohit@gmail.com